Volume-7 | Issue-10 | October-2018 | PRINT ISSN No 2250-1991

ORIGINAL RESEARCH PAPER

History

जैन धर्म मे सोलह कारण–भावना

KEY WORDS:

मीना जैन

रिसर्च स्कालर मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

भारतीय समाज एवं साहित्य में षिक्षक को राष्ट्र निर्माता कहा गया है क्योंकि वह स्वयं जलकर दूसरों को प्रकाष देता है। षिक्षक समाज को असत्य से सत्य की ओर, अन्धकार से प्रकाष की ओर तथा मृत्यु से अमरता की अजैन धर्म क्रमबद्ध पर्याय को स्वीकार करता है और इसी की सिद्धि के लिए आलोचित पुराणों में निश्चित मुक्ति प्राप्ति के अधिकृत उपदेशकथा तीर्थंकर नामकर्म के आस्रव के कारण रूप सोलह भावनाओं का वर्णन मिलता है। इन सोलह भावनाओं का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है।

1. दर्शन–विशुद्धि दर्शन विशुद्धि अर्थात् सम्यग्दर्शन की विशुद्धि। सम्यग्दर्शन स्वयं आत्मा की शुद्ध पर्याय होने से बन्ध का कारण नहीं है, किन्तु सम्यग्दर्शन की भूमिका में एक खास प्रकार की कषाय की विशुद्धि होती है, वह तीर्थंकर नाम कर्म के बन्ध का कारण होती है। "दर्शनविशुद्धि का अर्थ दर्शन के साथ रहा हुआ राग"। किसी भी प्रकार के बन्ध का कारण कषाय ही है। सम्यग्दर्शनादि बन्ध के कारण नहीं है। सम्यग्दर्शन जो कि आत्मा को बंध से छुडानेवाला है वह स्वयं बन्ध का कारण कैसे हो सकता है? तीर्थंकर नामकर्म भी आस्रव बन्ध ही है। इसलिए सम्यग्दर्शनादि भी वास्तव में उसका कारण नहीं है। सम्यग्दृष्टि जीव के जिनोपदिष्ट निर्ग्रन्थ मार्ग में जो दर्शन सम्बन्धी धर्मानुराग होता है वह दर्शनविशुद्धि है।[1]

2.विनयसम्पन्नता विनय से परिपूर्ण रहना सो विनयसम्पन्नता है। सम्यग्ज्ञानादि गुणों का तथा ज्ञानादिगुण संयुक्त ज्ञानी का आदर उत्पन्न होना सो विनय है इस विनय में जो राग है वह आस्रव बन्ध का कारण है। विनय दो तरह की होती है –1, निश्चय विनय, 2. व्यवहार विनय। अपने शुभस्वरूप में स्थिर रहना निश्चय विनय है। यह विनय बन्ध का कारण नहीं है। व्यवहार विनय अज्ञानी के होता है। अज्ञानी के यथार्थ विनय नहीं होता। सम्यग्दृष्टि के शुभभावरूप विनय होता है और वह तीर्थंकर नाम कर्म के आस्रव का कारण है। छट्ठे गुणस्थान के बाद व्यवहार विनय नहीं होती किन्तु निश्चय विनय होती है।

3.शील और व्रतों में अनतिचार – शील शब्द के तीन अर्थ होते हैं – 1. सत् स्वभाव, 2. स्वदार संतोष, और 3. दिग्व्रत आदि सात व्रत। यहाँ शील का अर्थ प्रथम एवं द्वितीय अर्थ के रूप में ही लेना है। सत् स्वभाव का अर्थ क्रोधादि कषाय के वश न होना है। यह शुभभाव है, जब अतिमन्द कषाय होती है तब यह होता है। अनतिचार का अर्थ है दोषों से रहितपन।

4.अभीक्ष्णज्ञानोपयोग अभक्ष्णज्ञानोपयोग का अर्थ है सदा ज्ञानोपयोग में रहना। ज्ञानोपयोग शब्द से अभिप्राय सम्यग्ज्ञान के द्वारा प्रत्येक कार्य में विचार कर उसमें प्रवृत्त होना है। यथार्थ ज्ञान से ही अज्ञान की निवृत्ति और हिताहित की समझ होती है, इसलिये यह भी ज्ञानोपयोग का अर्थ है।[2]

5.संवेग –सदा संसार के दुःखों से भीरूता का भाव संवेग है, उसमें जो वीतरागभाव है वह बन्ध का कारण नहीं है किन्तु जो शुभराग है वह बन्ध का कारण है। सम्यग्दृष्टियों के जो व्यवहार संवेग होता है वह रागभाव है, जब निर्विकल्प दशा में नहीं रह सकता तब ऐसा संवेगभाव निरन्तर होता है

6.शक्त्यनुसार त्याग– त्याग दो तरह का शुद्धभाव रूप और शुभभावरूप है। त्याग में जितनी शुद्धता होती है उतने अंश में वीतरागता है और वह बन्ध का कारण नहीं है। सम्यग्दृष्टि के शक्त्यनुसार शुभभावरूप त्याग होता है, शक्ति से कम या ज्यादा नहीं होता, शुभरागरूप त्याग भाव बन्ध का कारण है। त्याग का अर्थ दान देना भी होता है।

7.शक्त्यनुसार तप – इच्छा के निरोध को तप कहते हैं। इच्छा का निरोध होने से शुभाशुभ भाव का निरोध होता है। सम्यग्दृष्टि के जितने अंश में वीतराग भाव है उतने अंश में निश्चयतप है और वह बन्ध का कारण नहीं है, किन्तु जितने अंश में शुभरागरूप व्यवहार तप है वह बन्ध का कारण है। मिथ्यादृष्टि के यथार्थ तप नहीं होता, उसके शुभरागरूप तप को बालतप कहा जाता है। बाल का अर्थ है अज्ञान, मूढ। अज्ञानी के तप आदि का शुभभाव तीर्थंकर प्रकृति के आस्रव का कारण हो ही नहीं सकता।

8.साधु समाधि –सम्यग्दृष्टि साधु के तप में तथा आत्मसिद्धि में विघ्न आता देखकर उसे दूर करने का भाव और उनके समाधि बनी रहे ऐसा भाव साधु समाधि है, यह शुभराग है। यथार्थतया ऐसा राग सम्यग्दृष्टि के ही होता है किन्तु उनके वह राग की भावना नहीं होती।

9.वैयावृत्यकरण–वैयावृत्य का अर्थ है सेवा। रोगी, छोटी उमर के या वृद्ध मुनियों की सेवा करना सो वैयावृत्यकरण है। साधु समाधि का अर्थ है कि उसमें साधु का चित्त संतुष्ट रखना और वैयावृत्यकरण में तपस्वियों के योग्य साधन एकत्र करना जो सदा उपयोगी हो–इस हेतु जो दान दिया जाता है वह वैयावृत्य है, किन्तु साधु समाधि नहीं। साधुओं के स्थान साफ रखना, दुःख के कारण उत्पन्न हुए देखकर उनके पैर दाबना इत्यादि प्रकार से सेवा करना भी वैयावृत्य है, यह शुभराग है।[3]

10.अर्हत् भक्ति –अर्हत् सर्वज्ञ केवली जिन भगवान हैं, वे सम्पूर्ण धर्मोपदेश के विधाता हैं, वे साक्षात् ज्ञानी पूर्व वीतराग हैं। सम्यग्दृष्टि के जो शुभ भावरूप जो सराग भक्ति होती है वह पंचपरमेष्ठी की आधाररूप है और अर्हत् का समावेश पंचपरमेष्ठी में है।

11.आचार्य भक्ति –साधु संघ में जो मुख्य साधु हो उनको आचार्य कहते हैं, वे सम्यग्दर्शन ज्ञान पूर्वक चारित्र के पालक हैं और दूसरों को उसमें निमित्त होते हैं, और वे विशेष गुणाढ्य होते हैं।

12. बहुश्रुत भक्ति –बहुश्रुत का अर्थ बहुज्ञानी उपाध्याय या सर्वशास्त्र सम्पन्न होता है।

13.प्रवचन भक्ति –सम्यग्दृष्टि की जो शास्त्र की भक्ति है वही प्रवचन भक्ति है। इस भक्ति में प्रवचन रूप श्रुत की पूजा और अरिहन्त की पूजा में कोई भेद नहीं बताया है। अरिहन्त देव तो श्रुत की साक्षात् मूर्ति है इसलिए मन, वचन और काय को शुद्ध रखते हुए प्रवचन की पूजा करना ही प्रवचन भक्ति है।

14.आवश्यक अपरिहाणि – आवश्यक अपरिहाणि का अर्थ है आवश्यक क्रियाओं में हानि न होने देना। जब सम्यग्दृष्टि जीव शुद्ध भाव में नहीं रह सकता तब अशुभभाव दूर करने से शुभभाव रह जाता है, इस समय शुभरागरूप आवश्यक क्रियाएँ होती हैं। उस आवश्यक क्रिया के भाव में हानि न होने देना उसे आवश्यक अपरिहाणि कहा जाता है।

15.मार्ग प्रभावना –सम्यग्ज्ञान के महात्म्य द्वारा इच्छा निरोध रूप सम्यक्तप के द्वारा जिनपूजा इत्यादि के द्वारा धर्म को प्रकाशित करना मार्ग प्रभावना है। सम्यग्दृष्टि के जो शुभराग रूप प्रभावना है वह आश्रव बन्ध का कारण है परन्तु सम्यग्दर्शनादिरूप जो प्रभावना है वह आस्रव बन्ध का कारण नहीं है।

16.प्रवचन वात्सल्य – साधर्मियों के प्रति प्रीति रखना वात्सल्य है। वात्सल्य और भक्ति में अन्तर हैं वात्सल्य तो छोटे–बड़े सभी साधर्मियों के प्रति होता है और भक्ति अपने से जो बड़ा हो उसके प्रति होती है। श्रुत और श्रुत के धारण करने वाले दोनों के प्रति वात्सल्य रखना जो प्रवचन वात्सल्य है यह शुभरागरूप भाव हैं। यह आस्रव बन्ध का कारण है।

1. आदिपुराण 3/118 से 140
2. आदिपुराण 3/310
3. आदिपुराण 3/102 से 107
4. आदिपुराण 3/24 से 55